कविता की सप्रसंग व्याख्या

मनोज कुमार

यह लेख बताता है कि कविताओं को पढ़ाने का पारम्परिक तरीक़ा उन्हें कवि के जीवन और कविता के समय से बाँध देता है। प्रसंग और सन्दर्भ के साथ कविता को समझने का यह पारम्परिक तरीक़ा विद्यार्थी के कविता से जुड़ने के मौक़े कम कर देता है, और कविता को यांत्रिक तरीक़े से पढ़ने की ओर ले जाता है। लेखक बताते हैं कि कवि कविता के माध्यम 'से' नहीं, बल्कि कविता 'में' कहना चाहता है। विद्यार्थी कविता को अपना बना सकें, अपने देश-काल-परिस्थिति के मुताबिक़ उसे समझ सकें, यह आज़ादी कविता पढ़ते-पढ़ाते हुए होनी चाहिए। साथ ही लेख यह भी रेखांकित करता है कि कविता के पाठक को 'सहृदय' होना चाहिए। -सं.

"चन्दन की तुनक लचकीली डाली पर गुलाब जल से सनी दूध की छाली का अगर सु चिक्कन अवलेप बनाया जाए तो जो चित्र उभरेगा, वह सुमित्रानंदन पंत हैं।"

मेरे एक बड़े भाईसाहब ने 1977 में बिहार बोर्ड से मेट्रिक की परीक्षा पास की थी। उस परीक्षा की तैयारी के दौरान उन्होंने हिन्दी के तमाम कवियों का परिचय 'कण्ठस्थ' किया था। उन्हें अब भी यह पंक्ति याद है।

कवि-परिचय याद करने के लिए उन्होंने जो किताब पढ़ी थी, उसका नाम था– *कल्पतरु।* किस प्रकाशक ने यह किताब छापी थी, उन्हें अब याद नहीं है। कई साल पहले उनसे हुई बातचीत को मैंने रिकॉर्ड किया था। उस ऑडियो से गुज़रते हुए मुझे यह वाक्य सुनने को मिला। ठीक यही वाक्य मैंने अपने चाचाजी से भी सुना है, जो पास के क़स्बे के हाईस्कूल में कई दशकों तक हिन्दी के अध्यापक रहे। हिन्दी के अध्यापक के रूप में उस इलाक़े में आज भी उनकी ख्याति है।

सूरदास की, बालक कृष्ण सम्बन्धी कविताओं की व्याख्या शुरू करने से पहले प्रसंग के तौर पर विद्यार्थी आमतौर पर लिखते हैं, "जयदेव की देववाणी की स्निग्ध पीयूष-धारा, जो काल की कठोरता में दब गई थी, अवकाश पाते ही लोक-भाषा की सरसता में परिणत होकर मिथिला की अमराइयों में विद्यापति के कोकिल-कण्ठ से प्रकट हुई और आगे चलकर ब्रज के करील कुंजों के बीच फैल मुरझाए मनों को सींचने लगी। आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएँ श्रीकृष्ण की प्रेम-लीला का कीर्तन करने उठीं, जिनमें सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झंकार अन्धे कवि सूरदास की वीणा की थी।" अभी भी विद्यार्थी इस उद्धरण को एक साँस में सुना जाते हैं, और सूरदास पर पूछी गई किसी भी सप्रसंग व्याख्या में प्रसंग की जगह एक झटके से लिख डालते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का सूरदास विषयक यह उद्धरण भले ही कविता से जुड़ा न हो, पर इसके असर का अनुमान उन्हें रहता है।

इन प्रकरणों पर सोचते हुए दो बातें तत्काल समझ में आ रही हैं। उनमें से एक है, स्कूली पाठ्यक्रम में छायावादी साहित्यिक परम्परा के उत्तरजीविता। छायावाद की भाषा और भाव, अभी तक हिन्दी कविता पढ़ने-पढ़ाने वालों के लिए अच्छे साहित्य की कसौटी बने हुए हैं।[1]

साहित्यिक पाठ, रचनाकार के सन्दर्भ के साथ-साथ पाठकों के सन्दर्भ से भी जुड़ा होता है। कविता के अर्थग्रहण की प्रक्रिया रचनाकार, रचना और पाठक के बीच एक असमाप्त संवाद की प्रक्रिया है। कविता के अध्यापन में 'सप्रसंग व्याख्या' की जो परिपाटी बनी उसमें अकसर इस संवाद का तीसरा संवादी, यानी पाठक (विद्यार्थी), अनुपस्थित होता है।

दूसरी बात है कि हिन्दी साहित्य के स्कूली अध्यापन में – शायद विश्वविद्यालयी अध्यापन में भी – छायावादी कवियों को उनकी कविताओं का नायक भी मान लिया गया। वे कविताओं के महज़ वाचक (या रचनाकार) नहीं रह गए। इसलिए कविता की व्याख्या के लिए बार-बार उनकी जीवनियों को टटोला गया। और हमेशा तो नहीं, लेकिन प्रायः उनकी जीवनियाँ बायोग्राफ़ी (जीवनी) की तरह नहीं, बल्कि हैजियोग्राफ़ी (जीवन-चरित) की तरह पेश की गईं।[2] मुझे लगता है, इस हैजियोग्राफ़िक परम्परा को जैसे-तैसे अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर और नागार्जुन तक क़ायम रखने की कोशिश चलती रही। हिन्दी के अध्यापकों के पास निराला, पंत या जानकी वल्लभ शास्त्री से जुड़े तमाम क़िस्सों का ख़ज़ाना होता है। कवियों के बारे में कहानियाँ उनके इर्द गिर्द प्रभामण्डल का निर्माण करती हैं। अकसर इन कहानियों से कविता की कोई समझ हासिल नहीं होती।

किसी स्कूली किताब में कविता का पाठ उठाकर देखिए। प्रायः पाठ की शुरुआत कवि-परिचय से होती है और अन्त शब्दार्थ के साथ। कभी-कभी शब्दार्थ पाठ के पहले भी दे दिए जाते हैं।

परीक्षा में किसी कविता से एक उद्धरण निकालकर उसकी 'सप्रसंग व्याख्या' करने को कहा जाता है। अपेक्षा यह होती है कि उस व्याख्या में कविता में मौजूद अनिवार्य सन्दर्भों के अलावा सारे प्रसंग लेखक के जीवन और उसके देशकाल के हों। कवि के जीवन की चमकदार कहानी से कविता को लपेटे बिना क्या कविता की समझ बनाना मुश्किल है? ज़रूरी नहीं कि कविता कवि के जीवन से ही जुड़े, वह पाठक या विद्यार्थी के जीवन-प्रसंगों से भी तो जुड़ सकती है! क्या कविता के अध्यापन में इस सम्भावना

---

1. छायावाद (1918-1936), जिसमें निराला, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा जैसे कवि शामिल थे, को आधुनिक हिन्दी साहित्य का स्वर्ण काल कहा-समझा जाता है। लगता है कि छायावाद के बाद की कविता, पढ़ने-पढ़ाने वालों के सामान्य बोध में जगह नहीं बना सकी। भाषाई अलंकार, संस्कृतनिष्ठ भाषा और भावों की बहुलता इसी छायावादी परम्परा का हिस्सा है। इस समझ के मुताबिक़, 'कौन तुम संसृति जलनिधि तीर, तरंगों से फेंकी मणि एक / कर रहे निर्जन का चुपचाप प्रभा की धारा का अभिषेक' (*कामायनी*, जयशंकर प्रसाद) जैसी काव्य पंक्तियाँ ज़्यादा कविता समझी जाएगी और 'सचमुच, इधर तुम्हारी याद तो नहीं आई / झूठ क्या कहूँ। पूरे दिन मशीन पर खटना / बासे पर आकर पड़ जाना और कमाई / का हिसाब जोड़ना, बराबर चित्त उचटना। / इस उस पर मन दौड़ाना। फिर उठ कर रोटी / करना। कभी नमक से कभी साग से खाना। / आरर डाल नौकरी है। यह बिलकुल खोटी / है। इसका कुछ ठीक नहीं है आना जाना।' (*आरर डाल*, त्रिलोचन) कम कविता होगी।

2. बायोग्राफ़ी (Biography) और हैजियोग्राफ़ी (Hagiography) किसी व्यक्ति के जीवन के वर्णन की दो शैलियाँ हैं। बायोग्राफ़ी में व्यक्ति के जीवन का तथ्यात्मक विवरण पेश किया जाता है और हैजियोग्राफ़ी में व्यक्ति के जीवन से जुड़े मिथक, कहानियाँ, क़िस्से, चमत्कार, आदि सब शामिल हो सकते हैं। तटस्थता और तथ्यपरकता बायोग्राफ़ी का गुण है जबकि हैजियोग्राफ़ी में इनकी अनिवार्यता नहीं होती। बायोग्राफ़ी आधुनिक समय का उत्पाद है, और हैजियोग्राफ़ी आधुनिक काल से पहले के समय का। मसलन, शरदचंद के जीवन पर विष्णु प्रभाकर की लिखी किताब *आवारा मसीहा* एक बायोग्राफ़ी है, और गोसाईं गोकुलनाथ रचित किताब *चौरासी वैष्णव की वार्ता* हैजियोग्राफ़ी।

की टोह ली जाती है? इस प्रकार कविता स्कूली बच्चों के लिए 'हिमगिरि के उत्तुंग शिखर' पर पाई जाने वाली दुर्लभ वस्तु बनकर रह गई। विद्यार्थियों को यही सिखाया गया कि 'प्रसंग' में कवि के बारे में संस्कृतनिष्ठ भाषा में शब्दों का आडम्बर लिखना है, और व्याख्या में कविता का गद्यार्थ।

कविता का पाठ और उसकी व्याख्या पाठक के सन्दर्भ में कैसे पुनर्जीवित होते और बदलते हैं, इसके अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। लेकिन यहाँ एक प्रसंग की चर्चा से इस प्रक्रिया को रेखांकित करने की कोशिश करूँगा। हरिवंश राय बच्चन की एक कविता है 'लहरों का निमंत्रण'। यह कविता 1937 में प्रकाशित होती है और उनके कविता संकलन *मधुकलश* में शामिल होती है। कविता का मुखड़ा है :

तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों में निमंत्रण!

इन पंक्तियों को उस दौर के पाठकों ने सराहा और अपने सन्दर्भों में इसे समझा। बच्चनजी ने इस कविता में आगे की पंक्तियों में समष्टि या व्यापक जनता के दुःखों की कल्पना सागर की लहरों के रूप में की है जिससे कविता का वाचक एकाकार होना चाहता है।

सवाल अकसर इस प्रकार फ़्रेम किया जाता है— 'इस कविता के माध्यम से कवि क्या कहना चाहता है?' पहली बात तो यह कि कवि, कविता के माध्यम से नहीं, बल्कि कविता के माध्यम में कुछ कहना चाहता है।

बीसवीं सदी के तीसरे-चौथे दशक के बाद आने वाले कई दशकों तक इन पंक्तियों की कोई ख़ास चर्चा नहीं हुई, लेकिन 1970 के मध्य में ये पंक्तियाँ पुनर्जीवित हो उठीं। सन 1973-74 में छात्रों का आन्दोलन गुजरात से लेकर बिहार तक फैल रहा था। यह आपातकाल से ठीक पहले के साल थे। छात्रों ने बुज़ुर्ग समाजवादी-सर्वोदयी नेता जयप्रकाश नारायण से अनुरोध किया कि वे उनके आन्दोलन का नेतृत्व करें। प्रसिद्ध है कि पटना के गाँधी मैदान में एक विशाल जनसभा आयोजित हुई जिसमें महिलाओं ने भी बड़ी संख्या में भागीदारी की थी। तत्कालीन कांग्रेस सरकार ने इस सभा को रोकने के तमाम प्रयास किए, लेकिन पटना के गाँधी मैदान में जनसमुद्र उमड़ चला। कहा जाता है कि बुज़ुर्ग जयप्रकाश नारायण ने अपने उद्बोधन में बच्चन की इन पंक्तियों को गुनगुनाया था : 'तीर पर कैसे रुकूँ मैं, आज लहरों में निमंत्रण!'[3] उस सभा में मौजूद पाँच लाख लोगों ने तब इस कविता को अपने-अपने सन्दर्भों में गुनगुनाया और समझा होगा। इस तरह ये पंक्तियाँ पुनर्जीवित हो उठीं।

एक और उदाहरण उर्दू कविता से भी देखें। ग़ालिब जैसे शायरों की लोकप्रियता के पीछे अर्थ का पाठक-केन्द्रित होना ही है। वे इतने मक़बूल शायर इसीलिए हैं कि उन्हें हम अपने-अपने निजी और सामयिक सन्दर्भों में पढ़ पाते हैं। उनका एक शेर है, 'ईमाँ मुझे रोके है जो खींचे है मुझे कुफ़्र / काबा मिरे पीछे है कलीसा (गिरजाघर) मिरे आगे'। इस शेर को ग़ालिब के बारे में प्रचलित कहानियों से जोड़कर पढ़ा जा सकता है कि धार्मिकता से उनका कोई ख़ास लेना-देना नहीं था और वे अपने समय में अँग्रेज़ों के आने से प्रभावित थे। इस शेर को सन् 1857 के समय की स्थितियों के लिहाज़ से भी पढ़ा जाता रहा है कि उस दौर में मुग़ल बादशाहों की पुरानी दुनिया जा रही थी और अँग्रेज़ों की नई दुनिया आ रही थी। पर इन सन्दर्भों से ज़्यादा इस शेर की

3. देखें— 'गाँधी मैदान तब', के विक्रम राव, *जनसत्ता*, 20 अक्तूबर, 2014. https://www.jansatta.com/duniya-mere-aage/editorial-gandhi-maidan/3618/

अहमियत इसलिए है क्योंकि इसमें एक असम्भव द्वन्द्व मौजूद है। दो स्थितियों का खिंचाव, दो विरोधी भाव एक साथ यहाँ हैं, एक दूसरे से अलग दिशा में जाते हुए। विद्यार्थी या पाठक के जीवन में ऐसी स्थितियाँ बार-बार आती ही रहती हैं। ऐसे में वह इस शेर को अपने सन्दर्भ से पढ़ सकता है। उसके जीवन के बहुत सारे ऐसे अनुभव होंगे जहाँ भाव या स्थितियाँ परस्पर द्वन्द्व में होंगी। विद्यार्थी व्यक्तिगत द्वन्द्वों से इस शेर को पढ़ सकता है।

इस नज़र से देखें तो साहित्यिक पाठ, रचनाकार के सन्दर्भ के साथ-साथ पाठकों के सन्दर्भ से भी जुड़ा होता है। कविता के अर्थग्रहण की प्रक्रिया रचनाकार, रचना और पाठक के बीच एक असमाप्त संवाद की प्रक्रिया है। कविता के अध्यापन में 'सप्रसंग व्याख्या' की जो परिपाटी बनी उसमें अकसर इस संवाद का तीसरा संवादी, यानी पाठक (विद्यार्थी), अनुपस्थित होता है। हालाँकि पिछले कई दशकों से शिक्षा के क्षेत्र में बाल-केन्द्रित या विद्यार्थी-केन्द्रित शिक्षा की बात शुरू हुई है, लेकिन कविता के अध्यापन में विद्यार्थी कवि के 'कथ्य' का निष्क्रिय ग्रहणकर्ता होता है और शिक्षक उस अर्थ का संवाहक। कविता कक्षा में घटित नहीं होती है। यानी, अर्थग्रहण की प्रक्रिया जीवन्त नहीं होती, बल्कि यह एक घट चुकी घटना के पुनर्कथन का प्रयास होता है। सवाल अकसर इस प्रकार फ़्रेम किया जाता है– 'इस कविता के माध्यम से कवि क्या कहना चाहता है?' पहली बात यह कि कवि, कविता के माध्यम *से* नहीं, बल्कि कविता के माध्यम *में* कुछ कहना चाहता है। कविता के अर्थग्रहण के लिए और कवि से संवाद करने के लिए पाठ के ज़रिए उस माध्यम में प्रवेश करना पड़ता है। फिर सार्थक संवाद में हर संवादी की सक्रिय भूमिका होती है। अगर हम चाहते हैं कि कविता कक्षा में घटित हो तो हमें विद्यार्थी को अपने सन्दर्भों के साथ इस संवाद में शामिल होने का आमंत्रण देना होगा।

सार्थक संवाद में हर संवादी की सक्रिय भूमिका होती है। अगर हम चाहते हैं कि कविता कक्षा में घटित हो तो हमें विद्यार्थी को अपने सन्दर्भों के साथ इस संवाद में शामिल होने का आमंत्रण देना होगा।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005 के बाद बनी हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों में कुछ ऐसे प्रयास हुए हैं। एक तो, इन किताबों में हिन्दी के मध्यकालीन और छायावादी कवियों के साथ-साथ बड़ी संख्या में आधुनिक और समकालीन कवियों की कविताओं को भी शामिल किया गया, दूसरी तरफ़ कविता को कक्षा में अलग तरीक़े से बरतने के संकेत भी दिए गए हैं। पाठ के अन्त में कई प्रकार के प्रश्न हैं। सवालों की एक श्रेणी है जिसे 'रचना और अभिव्यक्ति' के सवाल के रूप में वर्गीकृत किया गया है। उदाहरण स्वरूप, मंगलेश डबराल की कविता 'संगतकार' एनसीईआरटी की दसवीं कक्षा की पाठ्यपुस्तक में शामिल है। इस कविता के साथ दिए गए 'रचना और अभिव्यक्ति' के कुछ सवालों पर ग़ौर कीजिए :

"(8) कल्पना कीजिए, आपको किसी संगीत या नृत्य समारोह का कार्यक्रम प्रस्तुत करना है, लेकिन आपके सहयोगी कलाकार किसी कारणवश नहीं पहुँच पाएँ–

(क) ऐसे में अपनी स्थिति का वर्णन कीजिए।

(ख) ऐसी परिस्थिति का आप कैसे सामना करेंगे?

(9) आपके विद्यालय में मनाए जाने वाले सांस्कृतिक समारोह में मंच के पीछे काम करने वाले सहयोगियों की भूमिका पर एक अनुच्छेद लिखिए।" (कक्षा-10 की पाठ्यपुस्तक, *क्षितिज-2,* पाठ 6, एनसीईआरटी, नई दिल्ली)

इन सवालों के ज़रिए या इन सवालों से संकेत लेकर कुछ अन्य ऐसे ही सवालों के ज़रिए कक्षा में रचनाकार, रचना और पाठक के बीच जीवन्त संवाद आयोजित करने की कोशिश की जा सकती है। शायद सीबीएसई स्कूलों में फ़ॉर्मेटिव असेसमेंट की खानापूर्ति के लिए इन सवालों के उत्तर लिखवा लिए जाते हों, लेकिन कविता-अध्यापन की 'सप्रसंग व्याख्या' वाली परिपाटी के कारण ऐसे सवालों के ज़रिए जीवन्त संवाद आयोजित करने की बहुत गुंजाइश नहीं होती है।

पिछले कई दशकों से शिक्षा के क्षेत्र में बाल-केन्द्रित या विद्यार्थी-केन्द्रित शिक्षा की बात तो शुरू हुई है, लेकिन कविता के अध्यापन में विद्यार्थी कवि के 'कथ्य' का निष्क्रिय ग्रहणकर्ता होता है और शिक्षक उस अर्थ का संवाहक। कविता कक्षा में घटित नहीं होती है। यानी, अर्थग्रहण की प्रक्रिया जीवन्त नहीं होती, बल्कि यह एक घट चुकी घटना के पुनर्कथन का प्रयास होता है।

अध्यापन की इस परिपाटी की दूसरी दिक़्क़त है कि इस परिपाटी में कविता की भाषा को रचना का बाहरी माध्यम मान लिया जाता है जिसके ज़रिए कवि कुछ कहना चाहता है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि कवि रचना के माध्यम से नहीं, बल्कि रचना के माध्यम में अपनी बात कहता है। आश्चर्य है कि संस्कृत और अन्य भारतीय भाषाओं के कवियों और काव्यशास्त्रियों ने ज़ोर देकर 'वाणी' और 'अर्थ'; 'कथ्य' और 'रूप' के अद्वैत की बात की है, लेकिन शायद 'साहित्य की सोद्देश्यता' के द्विवेदीयुगीन (1900-1918) विमर्श ने कालिदास, तुलसीदास जैसे बड़े रचनाकारों की इस अद्वैतवादी अन्तर्दृष्टि की अनदेखी कर दी। ज़ाहिर है कि जिस दौर में हिन्दी प्रदेश के स्कूलों और महाविद्यालयों में हिन्दी साहित्य का अध्यापन संहिताबद्ध हुआ, वह द्विवेदीयुगीन दौर ही था।[4] बहरहाल देखें कि कालिदास और तुलसीदास जैसे रचनाकारों ने 'वाणी' और 'अर्थ' के अद्वैत को लेकर क्या कहा है :

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥

(रघुवंशम्, प्रथमः सर्गः)

इस श्लोक में कालिदास अपने उस आराध्य (शिव-पार्वती) की वन्दना करते हैं जो वाणी और उसके अर्थ की तरह एकरूप हैं। यानी, शिव और पार्वती उसी तरह एकरूप हैं जैसे 'वाणी' और 'अर्थ'। यहाँ ग़ौर करने लायक़ बात है 'वाणी' और 'अर्थ' की एकरूपता। तुलसीदास ने भी अपने आराध्य सीता और राम की एकरूपता के वर्णन के लिए 'वाणी' और 'अर्थ' की एकरूपता का ही अप्रस्तुत विधान किया है :

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न॥

"जो वाणी और उसके अर्थ तथा जल और जल की लहर की तरह कहने में अलग-अलग हैं, परन्तु वास्तव में अभिन्न (एक) हैं, उन सीता और राम के चरणों की मैं वन्दना करता हूँ, जिन्हें दीन-दुःखी बहुत ही प्रिय हैं।" यहाँ ग़ौर करने की बात है कि तुलसी बहुत सधे हुए तरीक़े से कह रहे हैं कि 'वाणी' और 'अर्थ' तात्त्विक (Ontological) दृष्टि से अभिन्न हैं, सिर्फ़ (ज्ञान) मीमांसा के लिए हमें उन्हें भिन्न मानना पड़ता है। 'कहियत भिन्न, न भिन्न' – कहने के लिए भिन्न, वास्तव में भिन्न नहीं।

4. देखें - Kumar, K. (1990). 'Quest for Self-Identity: Cultural Consciousness and Education in Hindi Region, 1880-1950'. *Economic and Political Weekly*, 25(23), 1247-1255.

यह एक महत्त्वपूर्ण अन्तर्दृष्टि है जो परम्परा में मौजूद है। इसी प्रकार रचना के आस्वादन में 'सहृदय' की केन्द्रीय भूमिका को संस्कृत काव्यशास्त्र (*अभिनवगुप्त, आनंदवर्द्धन, मम्मट* आदि) में विशेष रूप से रेखांकित किया गया है। 'सहृदय' की केन्द्रीयता के सिद्धान्त से अर्थग्रहण में पाठक की सक्रिय भूमिका की सैद्धान्तिक अन्तर्दृष्टि विकसित की जा सकती है। अँग्रेज़ी में लुईस रोसेनब्लॉट (Louise Rosenblatt) ने अर्थग्रहण में रचनाकार, पाठ और पाठक के बीच संवाद (transaction) की बात की है। कविता के अध्यापन की चली आ रही परिपाटी के बरअक्स हमें इन सैद्धान्तिक अन्तर्दृष्टियों को खँगालना होगा, तभी हम पाठ्यपुस्तकों में शामिल नई-पुरानी कविताओं को लेकर विद्यार्थियों के साथ सार्थक संवाद कर पाएँगे।

मनोज कुमार वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के शिक्षा संकाय में अध्यापक हैं। 'दिगन्तर', जयपुर और 'रूम टू रीड' इंडिया जैसी संस्थाओं के साथ काम करते हुए आपने प्रारम्भिक शिक्षा में ज़मीनी स्तर पर काम किया है। शिक्षा, साहित्य, संस्कृति और समसामयिक मसलों पर इनकी कई रचनाएँ हिन्दी और अँग्रेज़ी में प्रकाशित हुई हैं। इन्होंने बच्चों के लिए भी छिटपुट रचनाएँ लिखी हैं जो पत्रिकाओं में या पिक्चर बुक के रूप में प्रकाशित हुई हैं।

सम्पर्क : manoj.kumar@apu.edu.in

इस आलेख में व्यक्त किए गए विचार और सामग्री लेखक की हैं। अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय अनिवार्य रूप से न तो इनका समर्थन करता है, न ही ये अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के विचारों को प्रतिबिम्बित करते हैं।